राजपूत और मुग़ल : संबंधों का आकलन

देशज इतिहासकारों की दृष्टि में

विक्रम सिंह अमरावत
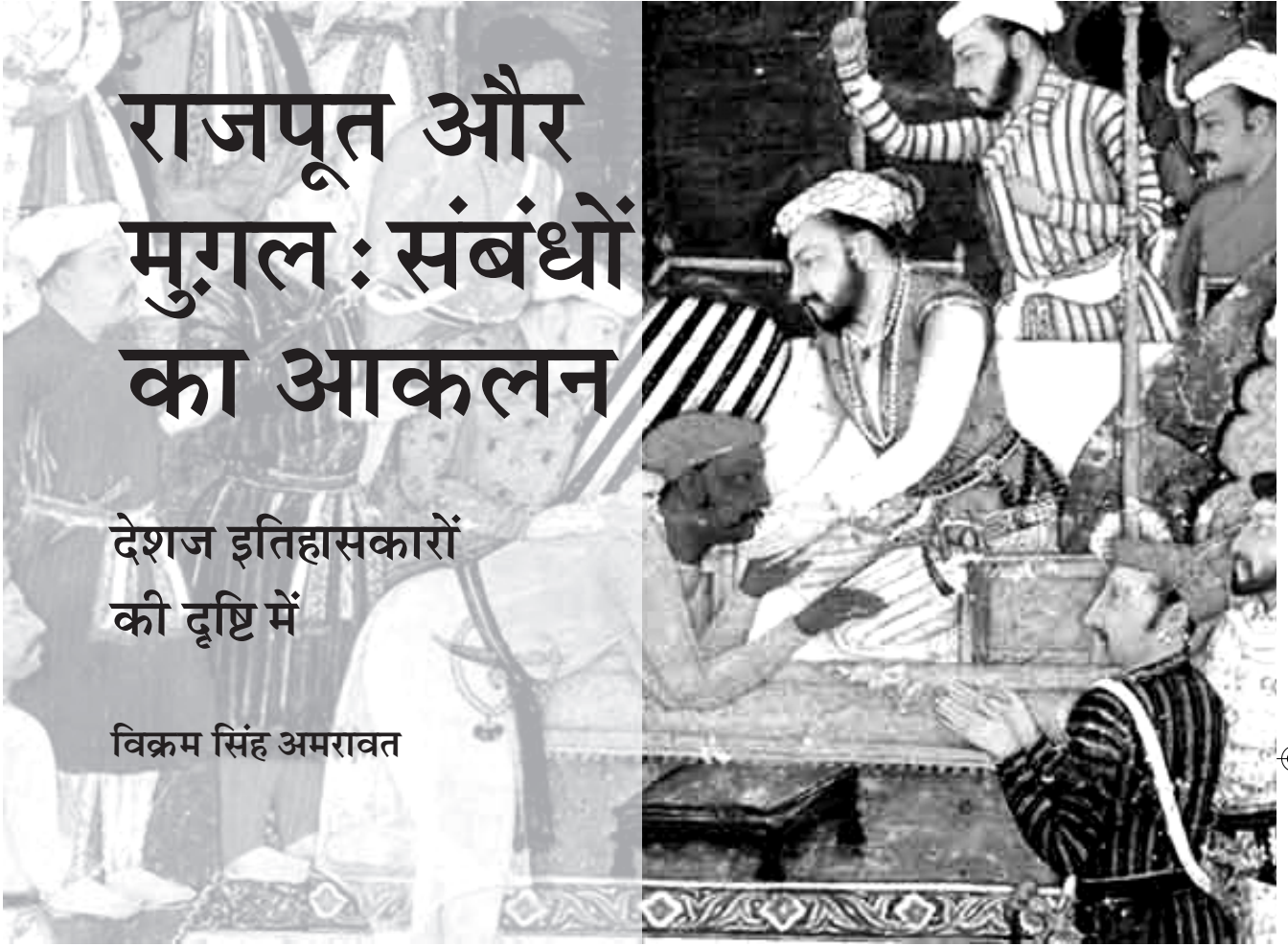
राजपूत-मुग़ल संबंधों के बारे में इतिहासकारों के बीच एक नयी बहस ज़ोर पकड़ रही है। इसकी पृष्ठभूमि में 'स्व' और 'अन्य' के बीच में बँटवारा करने वाला वह राष्ट्रवाद है जिसके तहत भारतीय इतिहास के मध्यकाल को पुनर्व्याख्यायित करने की कोशिशें की जा रही हैं। बाह्य दुश्मनों के अतिरिक्त आंतरिक दुश्मनों की खोज में इतिहास का सहारा तो लिया ही जा रहा है, सामाजिक-राजनीतिक संबंधों को भी धार्मिक आधार पर व्याख्यायित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस 'स्व' एवं 'अन्य' की व्याख्या का मूल उद्देश्य इतिहास में एक जातीय संघर्ष के अस्तित्व को ढूँढ़ने और उसके चिह्नों को अधिक गहराई से अंकित करना प्रतीत होता है। यह कोशिश अंध-राष्ट्रवाद की विचारधारा के पोषण में सहायक हो सकती है।

संजय लीला भंसाली की फ़िल्म *पद्मावत* को लेकर जो विवाद हुआ उसमें इतिहास को आधार बना कर राष्ट्रवाद का बाज़ार गर्म किया गया। सीधे तौर पर एक द्विभाजन खड़ा कर दिया गया : राष्ट्रवादी या राष्ट्रविरोधी। इसके तहत 'स्व' एवं 'अन्य' को परिभाषित करके देखा गया और इतिहास के एक विशिष्ट काल एवं विशिष्ट राजनीतिक संबंधों की व्याख्या आजकल प्रचलित किये जा रहे राष्ट्रवाद के संदर्भ में करने का प्रयास किया गया। वास्तव में इस क़वायद का मक़सद इतिहास को अपने निहित स्वार्थ के संदर्भ में व्याख्यायित करना है। मध्यकाल में तेरहवीं सदी के प्रारम्भ से सत्रहवीं सदी के अंत तक उत्तर भारत में पहले तुर्क-अफ़गान सुल्तानों की सत्ता और बाद में मुग़ल बादशाहों

का प्रभुत्व रहा। यह सही है कि तुर्क-अफ़गान एवं मुग़ल मूल रूप से उत्तर भारत के नहीं थे, और किसी समय में यहाँ आ कर बसे थे। किंतु यह स्थलांतर और बसावट एक सहज प्रक्रिया की तरह थी और महज़ राजनीतिक प्रभुत्व तक ही सीमित न हो कर एक सांस्कृतिक समन्वय के तहत विकसित हो रही थी। इस अवधि में 'स्व' एवं 'अन्य' के विचार की संरचना समकालीन स्रोतों या समकालीन लेखों के आधार पर ही जानी जा सकती है। लेकिन ऐसी जाँच-पड़ताल करने के बजाय आजकल इस बात को ऐतिहासिक तथ्य की तरह स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है कि *ये सभी मुस्लिम शासक हमारे देश में बाहर से आये थे और इसलिए ये हमेशा विदेशी ही रहे हैं और उनको हमेशा विदेशी ही माना गया है। उनके साथ यहाँ के निवासियों एवं शासक वर्ग का हमेशा प्रतिरोध का ही संबंध रहा है और उन्होंने हमेशा यहाँ के निवासियों के साथ 'अन्य' का व्यवहार ही किया है।* इस दावेदारी की जाँच के लिए यह जानना बहुत आवश्यक हो जाता है कि समकालीन परिस्थितियों में यहाँ के शासक वर्ग (राजपूत शासक) एवं समकालीन देशज या स्थानीय इतिहासकारों का मुस्लिम शासकों के प्रति क्या सोच था और उनके सोच में 'स्व' एवं 'अन्य' को किस प्रकार से समझा जा सकता है।

राजपूत-मुग़ल संबंधों को लेकर अभी तक जो अनुसंधान-कार्य हुआ है, उसमें अधिकांशतः फ़ारसी एवं राजस्थान के अभिलेखीय स्रोतों को आधार बनाया गया है, जैसे मुग़ल दरबार और राजपूत दरबार के सरकारी दस्तावेज़। विशेष तौर पर मारवाड़, मेवाड़ एवं आमेर के शासकों के मुग़ल दरबार के साथ संबंधों पर जो शोध-कार्य हुए हैं उनमें फ़ारसी एवं राजस्थानी दस्तावेज़ों का बहुतायत से उपयोग हुआ है। इतिहासकार सतीश चंद्र ने मुग़ल शासकों के राजस्थान के राजपूत राज्यों के संबंधों के विषय में विस्तार से चर्चा की है। इसमें उन्होंने फ़ारसी स्रोतों के अतिरिक्त राजस्थानी स्रोतों का पर्याप्त उपयोग किया है।[1] मारवाड़ के मुग़लों से संबंध पर वी.एस. भार्गव, मेवाड़ के मुग़लों से संबंध पर गोपीनाथ शर्मा का काम भी समकालीन फ़ारसी एवं राजस्थानी स्रोतों पर आधारित है। घनश्याम दत्त शर्मा ने वकील रिपोर्ट्स के आधार पर राजपूतों के मुग़लों से संबंधों को समझने का प्रयास किया और 1693 से 1712 के बीच की वकील रिपोर्ट्स को प्रकाशित भी किया।[2] इनायत अली ज़ैदी ने राजपूत शासकों के मुग़लों के साथ संबंधों को एक राष्ट्रीय सह-अस्तित्व के संदर्भ में देखा है।[3] प्रस्तुत शोध-पत्र में उपरोक्त सवालों को समझने के लिए राजपूत-मुग़ल संबंधों को समकालीन एवं परवर्ती देशज इतिहासकारों की दृष्टि को देखने का प्रयास किया जाएगा।

भले ही आजकल राजपूत-मुग़ल संबंधों को राष्ट्रीय प्रतिरोध की कहानी के रूप में दिखाने का प्रयास किया जा रहा हो, वस्तुनिष्ठता के लिए यह देखना भी ज़रूरी हो जाता है कि समकालीन देशज इतिहासकार इस संबंध को किस प्रकार से देख रहे थे। मेरे लेख में सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच राजस्थान के राजपूत राज्यों में, विशेष तौर पर मारवाड़ एवं बीकानेर राज्यों में हुए इतिहास-लेखन की समीक्षा समकालीन इतिहासकार की दृष्टि के संदर्भ में की जाएगी। ध्यान रहे अकबर से लेकर औरंगज़ेब तक मुग़ल शासकों के संबंध राजपूत शासकों के साथ सहयोग के भी रहे और टकराव के भी। इसलिए ज़रूरी है कि इस अवधि के संबंधों को समकालीन देशज इतिहास-लेखन (राजपूत राज्यों में लिखे गये इतिहास) के ज़रिये सहयोग-प्रतिरोध, 'स्व' और 'अन्य' की अवधारणा की जाँच की जाए।

समकालीन देशज इतिहास-लेखन

मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन की जिस परम्परा का विकास हुआ उसमें देशज भाषाई साहित्य में रचित इतिहास-ग्रंथों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कड़ी में राजस्थानी भाषा में रची गयी

[1] सतीश चंद्र (1993). पुस्तक के कुल 12 लेखों में पहले चार लेख मुग़लों और राजस्थान के राजपूत राज्यों के संबंधों पर केंद्रित हैं.

[2] जी.डी. शर्मा (सं.)(1986).

[3] राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के उन्तीसवें अधिवेशन (2014) का अध्यक्षीय भाषण.

ख्यातें अहम स्थान रखती हैं। फ़ारसी इतिहास-लेखन परम्परा का प्रभाव इस भाषाई साहित्य में रचित इतिहास-ग्रंथों पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है और इसी वजह से इनका स्वरूप एवं विषय-वस्तु मुख्य रूप से राजनीतिक इतिहास के इर्द-गिर्द ही घूमती है। आधुनिक इतिहास-लेखन में समकालीन इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक स्रोत के रूप में राजस्थान के ख्यात-ग्रंथ बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही चर्चा का विषय रहे हैं। अरबी- फ़ारसी इतिहास-लेखन परम्परा के आधार पर भारतीय भाषाओं में मध्यकाल में जिस प्रकार का इतिहास-लेखन हुआ उसकी उत्तरोत्तर परिवर्धित एवं विकासशील प्रतिकृति के रूप में ख्यात साहित्य को देखा जा सकता है।[4]

राजस्थानी भाषा में ख्यात नामक साहित्य की रचना का सर्वप्रथम उल्लेख तो नौवीं सदी के लगभग प्राप्त होता है, लेकिन इस समय की कोई रचना देखने में नहीं आती। इसके पश्चात् एक लम्बा अंतराल है और फिर पुन: सोलहवीं सदी में ख्यात नामक रचनाएँ देखने में आती हैं जब राठौड़ शासकों की वंशावली एवं कार्यों पर आधारित *बीकानेर रे राठौड़ां री ख्यात सीहे जी सूं* एवं *राठौड़ां री बात सीहेजी सूं रायसिंघ ताईं* प्राप्त होते हैं। यही था वह समय जब भारत में फ़ारसी इतिहास-लेखन परम्परा का विकास हो रहा था। अकबर के समय में जब अबुल फ़ज़ल ने इतिहास लिखना शुरू किया तब राजपूत राज्यों से भी संबंधित इतिहास को मँगवाया गया। इस प्रक्रिया ने राजस्थान के राजपूत राज्यों में इतिहास-लेखन को एक नयी दिशा दी। ख्यात साहित्य के विषय में यह तथ्य भी प्रचलन में है कि अकबर के काल में जब उसने देशी राजाओं से उनके इतिवृत्त मँगवाए तभी से इन राजपूत राज्यों में ख्यातें लिखी जानी शुरू हुईं। इस दौर में जब ख्यातें पुनर्परिभाषित होने लगीं तब राजस्थानी साहित्य भी अपने विकास के चरम पर था, ख्यात साहित्य भी इस विकास का ही एक हिस्सा था, अत: निश्चित विषयवस्तु के साथ उसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होते रहे। गद्य एवं पद्य की विभिन्न विधाओं का उपयोग इतिहास विषयक वृत्तांत के लिए किया जाता और उनका संग्रह ख्यात के रूप में पेश किया जाता था। यूँ भी कह सकते हैं कि इतिहास विषयक सामग्री को विभिन्न विधाओं में लिख कर तैयार संग्रह या पोथी का नाम '*ख्यात*' दे दिया जाता।[5]

देशज इतिहासकारों के वर्णन में कहीं पर भी यह नहीं लगता कि राजपूत शासक मुग़लों की अधीनता में कोई छटपटाहट महसूस कर रहे थे और वे मुग़लों से स्वतंत्र होने के किसी मौक़े की तलाश में थे। बल्कि इसके ठीक उलट राजपूत शासक मुग़ल सर्वोच्चता के अंतर्गत स्वयं को सुरक्षित महसूस करते प्रतीत होते हैं।

इसके पश्चात् तो राठौड़ शासकों (जोधपुर एवं बीकानेर राज्यों) के इतिहास को आलेखित करते हुए ग्रंथों की शुरुआत हो जाती है। अलग-अलग नामों से इन ग्रंथों की रचना की गयी, किंतु इनकी विषयवस्तु एवं इनकी शैली लगभग एक जैसी ही रही। इनको बात, हकीगत, विगत के नाम से लिखा गया— जैसे, *बीकानेर री हक़ीगत धणियाँ री, अनूपसिंहजी रे मनसब ने तलब री विगत, राठौड़ां री बात सीहेजी सूं रायसिंघजी ताईं*। इस प्रकार प्रारम्भ में प्राप्त ख्यातों का स्वरूप वंशावली या पीढ़ी या वली के रूप में था, और इनमें राजवंश विशेष की वंशावली के साथ कतिपय शासकों की कुछ विशिष्ट उपलब्धियों का संक्षिप्त वर्णन कर दिया जाता था। इतिहास-लेखन का यह स्वरूप समय के साथ

[4] ख्यात साहित्य के संदर्भ में विस्तृत जानकारी के लिए देखें— विक्रम सिंह अमरावत (2017).

[5] कविराजा संग्रह में प्राप्त ग्रंथांक-78 *भण्डारियाँ री पोथी* एक ख्यात ही है. उसी में पत्र क्रमांक-72 (क) पर लिखा है कि 'संवत 1719 आ ख्यात नरसिंघदास दीवाण रे पोथी में लिखाणी अचलदासजी रा दादा रे' इसी प्रकार ग्रंथांक-6 पंचोली शिवकरण लालचंद री बही में लिखा है '*ख्यात री नक़ल सिवकरण लालचंदजी री बही जूनी थी तिणसु उतराई संवत 1871 रा*'.

बदलने लगा और इस पर विभिन्न साहित्यिक क्रियाओं का प्रभाव भी पड़ा। प्राप्त ख्यातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ख्यात-लेखन परम्परा सम्भवत: राठौड़ वंश शासित राज्यों में ही अधिक रही और उनमें भी मारवाड़ राज्य एवं बीकानेर राज्य प्रमुख रहे। सोलहवीं सदी से क्रमोत्तर ख्यातों का लेखन निजी प्रयासों एवं दरबारी आदेशों पर होता रहा। यह क्रम उन्नीसवीं सदी के अंत तक अनवरत रूप से इन दोनों राठौड़ राज्यों में चलता रहा।

राजस्थानी भाषा में रचित ख्यातों में *मुहतां नैणसी री ख्यात* सबसे प्रसिद्ध है। यह ख्यात न सिर्फ़ साहित्य की दृष्टि से बल्कि इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्व का ग्रंथ है। मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह-प्रथम के दीवान मुहतां नैणसी द्वारा किया गया इतिहास-विषयक सूचनाओं का संग्रहण इस नाम से प्रसिद्ध है।[6] वैसे यदि देखा जाए तो ख्यात विषयक रचनाएँ मुख्य रूप से महाराजा जसवंत सिंह के काल (1638-1678) से ही मिलनी प्रारम्भ होती हैं। उसी समय की *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* भी महत्त्वपूर्ण है।[7] जसवंत सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति बदली और यह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया। फिर पुन: औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब मारवाड़ पर वापस राठौड़ों का अधिकार हो गया, तब यह कार्य फिर से शुरू हुआ और उन्नीसवीं सदी तक अनवरत चलता रहा।

उन्नीसवीं सदी में ख्यात-लेखन का कार्य अपने चरम पर था। एक तरफ़ जहाँ मारवाड़ के कवि बाँकीदास आशिया ऐतिहासिक बातों का संग्रह कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ़ महाराजा मानसिंह के समय में मारवाड़ के राठौड़ वंश का इतिवृत्त तैयार करवाया जा रहा था। जिसका कार्य महाराजा तखत सिंह तक चला। यह इतिवृत्त *राठौड़ां री ख्यात* के नाम से जाना जाता है।[8] इसकी शैली जैसी ही ख्यात बीकानेर में भी लिखी जा रही थी, जिसे दयालदास सिंह ढायच लिख रहे थे।[9] दयालदास ने राजस्थानी भाषा में बीकानेर के इतिहास को लिपिबद्ध किया जो बीकानेर राज्य में लिखित राजस्थानी ख्यात लेखन की अंतिम कड़ी के रूप में मानी जा सकती है। वहीं मारवाड़ राज्य में उन्नीसवीं सदी के अंत तक 'महकमा-ए-तवारीख़ राज मारवाड़' की स्थापना हो चुकी थी[10] और अब इतिहास में मुख्य राजघराने के कार्यों के अलावा ठिकानों के कार्यों का समावेश होने जा रहा था। इस उपक्रम के तहत जिन ख्यातों की रचना हुई, वे विभिन्न ठिकानों एवं राजपूत खापों की ख्यातें, राजस्थानी ख्यात-साहित्य का अंतिम भाग थी। इस प्रकार जो ख्यात-लेखन एक संक्षिप्त इतिवृत्त के आलेखन से सम्भवत: सोलहवीं सदी में प्रारम्भ हुआ था, वह उन्नीसवीं सदी के अंत तक अनेक पड़ावों को पार करता हुआ अपने स्वरूप, विषयवस्तु एवं प्रकारों में विभिन्नता लिए हुए तीन सदियों तक पश्चिमी राजस्थान के इतिहास-लेखन का प्रतिनिधित्व करता रहा।

---

[6] महाराजा जसवंत सिंह-प्रथम के समय (1638-1678) में मारवाड़ राज्य के दीवान मुहणोत नैणसी का इतिहास विषयक संकलन, जिसे उन्नीसवीं सदी में बीकानेर में पुनर्लिखित किया गया. वही ग्रंथ आज *नैणसी री ख्यात* के नाम से प्रसिद्ध है. इस मूल राजस्थानी भाषा के ग्रंथ का हिंदी अनुवाद रामनारायण दुग्गड़ ने किया था जो कि नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ था. इसके बाद इसका मूलपाठ आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादित किया गया था जो कि चार खण्डों में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से क्रमश: 1960. 1962, 1964 एवं 1967 में प्रकाशित हुआ.

[7] इस ख्यात को *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* एवं *मुरारीदान री ख्यात* के नाम से जाना जाता है. अधिक जानकारी के लिए देखें, रघुबीर सिंह (सं.) (2006) : XIII-XVII.

[8] हुकम सिंह भाटी (सं.)(2007) : 2-3.

[9] यह ख्यात दयालदास सिंढ़ायच के द्वारा बीकानेर के महाराजा सरदार सिंह (1851-1872) के निर्देशानुसार तैयार की गयी थी. ख्यात का सम्पादन सर्वप्रथम डॉ. दशरथ शर्मा ने 1948 में किया था. उन्होंने ख्यात को तीन भागों में बाँटा था और उसका दूसरा भाग सम्पादित किया था. ख्यात के तीसरे भाग का सम्पादन 2005 में डॉ. हुकम सिंह भाटी ने *बीकानेर री ख्यात* के नाम से किया जिसे राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी द्वारा प्रकाशित किया गया.

[10] विक्रम सिंह अमरावत (2017) : 38.

बदलती राजनीतिक स्थितियाँ और निष्ठाएँ

ख्यातों में मुख्य रूप से मारवाड़ एवं बीकानेर राज्य के शासकों की राजनीतिक गतिविधियों के विवरण प्राप्त होते हैं। केंद्रीय सत्ता (मुग़ल) से इनका संबंध लगातार बना रहा और उस संबंध ने न सिर्फ़ यहाँ की स्थानीय राजनीति को प्रभावित किया बल्कि केंद्रीय राजनीति पर भी इसका पर्याप्त असर था। इस कारण से इन ख्यातों में राजपूत–मुग़ल संबंधों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगज़ेब के शासन काल में मारवाड़ और मुग़लों के संबंध प्रतिरोध एवं सहयोग के रहे। राव चंद्रसेन, जो कि अकबर के समकालीन मारवाड़ के शासक थे, ने आजीवन मुग़ल आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। उसकी मृत्यु के बाद मोटा राजा उदय सिंह, महाराजा सूर सिंह, महाराजा गज सिंह एवं महाराजा जसवंत सिंह के मुग़ल शासकों (अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ) के साथ पर्याप्त सहयोग एवं सद्भाव के संबंध रहे। जसवंत सिंह ने शाहजहाँ के उत्तराधिकार के युद्ध में शाहज़ादे औरंगज़ेब के विरुद्ध भाग लिया था। इस वजह से औरंगज़ेब के शासन में जसवंत सिंह को प्रथम श्रेणी का मनसब तो दिया गया, लेकिन औरंगज़ेब से उनके व्यक्तिगत संबंध कभी भी अच्छे नहीं रहे। जसवंत सिंह की मृत्यु के पश्चात् औरंगज़ेब ने मारवाड़ राज्य को हस्तगत कर लिया। इसके परिणामस्वरूप मारवाड़ का तीस वर्षीय स्वतंत्रता संग्राम (1678–1707) हुआ। इस पूरे समय में भी मुग़लों के उत्तराधिकार युद्ध में मारवाड़ के शासकों की निष्ठा बादशाह के प्रति रही, न कि उत्तराधिकारी के प्रति। अकबर के समय में जहाँगीर के विद्रोह के समय अकबर के प्रति निष्ठा रही, न कि जहाँगीर के प्रति। जहाँगीर के समय में जब ख़ुर्रम (शाहजहाँ) ने विद्रोह किया तब निष्ठा जहाँगीर के प्रति रही, न कि शाहजहाँ के प्रति। शाहजहाँ के समय में जब औरंगज़ेब ने विद्रोह किया तब निष्ठा शाहजहाँ के प्रति थी, न कि औरंगज़ेब के प्रति।

अकबर के काल में जब उसने देशी राजाओं से उनके इतिवृत्त मँगवाए, तभी से इन राजपूत राज्यों में ख्यातें लिखी जानी शुरू हुईं। इस दौर में जब ख्यातें पुनर्परिभाषित होने लगीं तब राजस्थानी साहित्य भी अपने विकास के चरम पर था, ख्यात साहित्य भी इस विकास का ही एक हिस्सा था, अतः निश्चित विषयवस्तु के साथ उसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होते रहे।

इस तरह से समय–समय पर मारवाड़ के शासकों की निष्ठा परिवर्तित होती रही। शाहजहाँ एवं औरंगज़ेब के प्रारम्भिक काल में जहाँ एक तरफ़ राजपूत राज्य मुग़लों के अधीनस्थ राज्य थे, वहीं औरंगज़ेब का परवर्ती काल राजपूत–मुग़ल संबंधों में कतिपय संघर्ष का काल भी रहा। औरंगज़ेब के पश्चात् मुग़लों की सत्ता उत्तरोत्तर कमज़ोर पड़ने लगी, और अठारहवीं सदी में केंद्रीय सत्ता का विखण्डन हो गया। राजपूत राज्य अब उस अधीनस्थता से मुक्ति की ओर थे और अपनी स्वायत्तता प्राप्त कर रहे थे। अठारहवीं सदी के अंत तक आते–आते उनका मराठों के साथ संघर्ष प्रारम्भ हो गया, और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से अंग्रेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा। दूसरे दशक के बाद अंग्रेज़ों की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी जो कि भारत की आज़ादी तक क़ायम रही। इस प्रकार इस काल में राजपूत राज्यों की राजनीतिक स्थिति में पर्याप्त बदलाव हुए। इस प्रकार के राजनीतिक बदलावों ने राजनीतिक निष्ठाओं के बदलने में मुख्य भूमिका निभाई, मुख्य रूप से वे निष्ठाएँ जो कि केंद्रीय सत्ता के प्रति अपने शासक वर्ग की स्थितियों की वजह से थी।

सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच लिखे गये इन ऐतिहासिक वृत्तांतों की रचना या तो राज्याश्रय अथवा राज्यादेश से हुई या फिर राज दरबार से संबंधित किसी व्यक्ति के द्वारा स्वरुचि से इनका संकलन एवं लेखन किया गया। दोनों ही संदर्भों में लेखक की निष्ठा अपने राज्य एवं उसकी अस्मिता के प्रति रही होगी, ऐसा माना जा सकता है। क्योंकि यदि राजकीय संरक्षण में राजकीय आदेश पर

इतिहास लिखा जाएगा तब तो स्पष्ट रूप से निष्ठा राज्य एवं उसके सम्मान को बरक़रार रखने के प्रति ही रहेगी। लेकिन यदि राजकीय संरक्षण एवं आदेश के अतिरिक्त भी यदि यह कार्य स्वरुचि के कारण किया जा रहा था तब भी राज्य के सम्मान (समकालीन अवधारणा) को बरक़रार रखना एक सामान्य बात थी। यह निष्ठा दो तरह की हो सकती थी। एक, शासक वर्ग के प्रति निष्ठा, जिसमें लेखक स्वयं को शासक के प्रति उत्तरदायी माने और इस बात का ख़याल रखे कि उसका लेखन शासक वर्ग के प्रति निष्ठावान हो और किसी भी तरह से नकारात्मक भाव उत्पन्न न करता हो। दूसरी निष्ठा अपने राज्य एवं शासक दोनों के प्रति। इसमें राज्य एवं शासक दोनों में भेद होता है। समकालीन ख्यातकारों की लेखनी में यह भेद स्पष्ट रूप से नहीं देखा जा सकता लेकिन अन्य स्रोतों के आधार पर इसे समझा ज़रूर जा सकता है।[11] जब तक मुग़लों का प्रभाव रहा तब तक मुग़लों के प्रति निष्ठा रही होगी, किंतु मुग़लों के कमज़ोर पड़ जाने के बाद मुग़लों के प्रति निष्ठा समाप्त हो गयी और राज्यों में स्वायत्तता स्थापित होने लगी। अठारहवीं सदी के अंत तक मराठों से त्रस्त रहे, बाद में उनसे भी मुक्ति मिली, लेकिन इसके पश्चात् अंग्रेज़ों की अधीनता को बिना किसी प्रतिरोध के सहजता से स्वीकार कर लिया। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं सदी में किसी केंद्रीय प्रभुत्व के अभाव में राजपूत राज्यों में आंतरिक संघर्ष की स्थिति रही और इसकी परिणति अंग्रेज़ों के प्रभुत्व को स्वीकार करने में हुई।

ख्यातकार एवं उनकी निष्ठाएँ

इस अध्ययन में मारवाड़ राज्य में रचित तीन ख्यातों— *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात, मुँदियाड़ री ख्यात*[12] एवं *राठौड़ां री ख्यात* के उद्धरण लिए गये हैं। इन तीन ख्यातों के चुनाव का मूल आधार इनकी विविधता है। *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* सत्रहवीं सदी में रचित ग्रंथ है जिसकी रचना राजकीय अथवा सामंती संरक्षण में की गयी। *मुंदीयाड़ री ख्यात* की रचना अठारहवीं सदी में हुई और सम्भवत: यह व्यक्तिगत प्रयास से रचित ग्रंथ है। *राठौड़ां री ख्यात* उन्नीसवीं सदी में रचित ख्यात है और इसकी रचना राज्यादेश द्वारा की गयी थी। तीन सदियों में अलग-अलग समय पर रचित इन तीन ख्यातों के रचनाकारों की सामयिक निष्ठाएँ भी अलग-अलग रही होंगी, इसलिए तीनों में मुग़लों के प्रति ख्यातकार की दृष्टि समकालीन प्रचलित अवधारणाओं का प्रतिनिधित्व करती हुई मानी जा सकती है। इन तीनों में आये विवरणों में मुग़ल शासकों के प्रति रवैया जाँचा जा सकता है।

राव चंद्रसेन (1562) से लेकर महाराजा अजीत सिंह के राज्यारोहण (1707) तक के मारवाड़ के शासकों के मुग़ल शासकों से संबंध के विवरण इन ख्यातों में विस्तृत रूप में प्राप्त होते हैं। इन विवरणों से ख्यात-लेखन के समय में राजपूत शासकों एवं राजपूत इतिहास लेखकों की मुग़लों के प्रति सोच या अभिवृत्ति का पता चलता है। वर्तमान में हम जिस 'स्व' एवं 'अन्य' की समस्या से रूबरू हो रहे हैं उसको ज़्यादा तार्किक रूप से समझने के लिए ये विवरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

उदयभाण चाम्पावत री ख्यात का लेखन किसने किया, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं है किंतु एक पत्र ख्यात में मिला है जिससे यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस ख्यात की रचना मारवाड़ के एक ठिकाने आउवा के जागीरदार संग्राम सिंह चाम्पावत या उसके पुत्र उदयभाण चाम्पावत द्वारा करवाई

[11] उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में जब अंग्रेज़ों ने विभिन्न राजपूत राज्यों से संधियाँ कर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली थी, तब मारवाड़ राज्य के ही राजकवि बाँकीदास आशिया ने अपने विचार व्यक्त करते हुए एक कवित्त की रचना की थी जिसमें उन्होंने समकालीन राजपूत राजाओं को कोसते हुए कहा कि अंग्रेज़ों ने देश पर अपना अधिकार कर लिया है और आप लोगों ने बिना किसी प्रतिकार के उनके सामने समर्पण कर दिया है. वे इस बारे में आम जनता से गुहार लगाते हैं कि हिंदू या मुसलमान कोई तो इस रजपूती की रक्षा करो. इस प्रकार जहाँ बाँकीदास की निष्ठा शासक वर्ग के प्रति थी, वहीं वह अपने राज्य के प्रति भी निष्ठावान था. इसीलिए जब शासक और राज्य दोनों में किसी एक को चुनना पड़ा तब राज्य के पक्ष में बात की गयी न कि शासक के पक्ष में. यद्यपि यह अनूठा उदाहरण है, किंतु ख्यातों के सूक्ष्म अध्ययन ख्यातकारों की निष्ठाओं के संदर्भ में अनेक अन्य प्रकार के तथ्य प्रस्तुत कर सकते हैं.

[12] विक्रम सिंह भाटी (सं.)(2005).

गयी थी। महाराजा जसवंत सिंह-प्रथम की मृत्यु (1678) के बाद औरंगज़ेब द्वारा मारवाड़ को हस्तगत करने की सूरत में उदयभाण चाम्पावत ने इस ख्यात को मुकनेश्वर भट्ट नामक ब्राह्मण को सुरक्षित रखने के लिए दे दिया था। राजनीतिक स्थिति अधिक बिगड़ जाने की वजह से इस ख्यात को एक शहर के परकोटे की एक दीवार में चुनवा कर सुरक्षित रख दिया गया। कालांतर में महाराजा तखतसिंह के समय में जब परकोटे की दीवारों की मरम्मत करवाई गयी तब यह ख्यात प्राप्त हुई थी। इसके बाद यह पोथीरूपी ख्यात जोधपुर के कविराज भारतदान एवं उनके बाद उनके पुत्र मुरारीदान के संग्रह में चली गयी। पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ ने जब मारवाड़ का इतिहास लिखा, तब इस ग्रंथ के कुछ हिस्से का अनुवाद करवाया था। उनको यह ग्रंथ मुरारीदान के संग्रह से प्राप्त हुआ था इसलिए इसका नाम उन्होंने *मुरारीदान री ख्यात* रख दिया।[13] यद्यपि इस ख्यात के लेखक के विषय में कोई जानकारी नहीं है। ख्यात का सबसे पहले उल्लेख लुईजीपियो टेस्सीटोरी ने अपने ग्रंथ-सर्वेक्षण में किया था जिसकी वजह से इतिहासकारों को इसका परिचय प्राप्त हुआ। ख्यात में राव सीहा से लेकर महाराजा जसवंतसिंह-प्रथम तक के मारवाड़ के शासकों का इतिहास संगृहीत है। ख्यात में राठौड़ों की विभिन्न शाखाओं का एवं विभिन्न घटनाओं में शामिल व्यक्तियों के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं ,किंतु राठौड़ शासकों के मुग़लों से संबंधों के वर्णन भी विस्तार से मिलते हैं। ख्यातकार की पहचान न होने की वजह से व्यक्तिगत निष्ठा को नहीं जाना जा सकता, लेकिन यह ज़रूर कहा जा सकता है कि वह समकालीन शासक वर्ग के प्रति निष्ठावान अवश्य रहा होगा।

मुँदियाड़ री ख्यात की रचना मारवाड़ के एक ठिकाने मुँदियाड़ के चैनदान बारहट द्वारा की गयी थी। ख्यात में महाराजा विजयसिंह के प्रारम्भिक काल 1759 तक का वर्णन प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि इसकी रचना सम्भवत: इसके पश्चात् ही अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में हुई होगी। अठारहवीं सदी में मारवाड़ राज्य अपने आंतरिक संघर्षों एवं मराठों के आक्रमणों से त्रस्त

[13] विक्रम सिंह भाटी (सं.)(2014) : viii.

था। इस समय तक मुग़ल सत्ता महज नाम की रह गयी थी और उसका राजपूत राज्यों से अब कोई संबंध नहीं रह गया था। इसलिए ख्यातकार की कोई मजबूरी नहीं थी कि वह मुग़लों के संबंध में मर्यादित या निष्ठापूर्वक लेखन कार्य करे। मुग़लों के विषय में लिखने के लिए लेखक राज्य के बंधन एवं मर्यादाओं से पूरी तरह मुक्त था इसलिए यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उक्त ख्यात में लेखक राजपूत-मुग़ल संबंध को 'स्व' एवं 'अन्य' के संदर्भ में किस प्रकार से देखता है।

राठौडां री ख्यात की रचना उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राज्याश्रय के तहत हुई थी। इसका लेखन आईदान खिड़िया द्वारा किया गया जो कि महाराजा मानसिंह के समय में प्रारम्भ हुआ और महाराज तखतसिंह के समय में 1872 में पूर्ण हुआ। यह ग्रंथ अभी तक प्राप्त सभी ख्यात ग्रंथों में सबसे विस्तृत है। ग्रंथ के अंत में लेखक यह भी लिखता है कि किस तरह कठिन परिश्रम से अनेक ग्रंथों के आधार पर इस ख्यात की रचना की गयी। उक्त ख्यात में मारवाड़ के राठौड़ शासकों के विस्तृत इतिवृत्त प्राप्त होते हैं। ख्यातकार आईदान खिड़िया के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। फिर भी समकालीन राज्य की राजनीतिक स्थिति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखक की निष्ठा अनिवार्य रूप से शासक के प्रति रही होगी। अत: लेखक का नज़रिया शासक वर्ग का नज़रिया माना जा सकता है। इस दृष्टि से यह ख्यात और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि इससे यह जाना जा सकता है कि जब मुग़लों का प्रभुत्व पूरी तरह से समाप्त हो गया था तब राजपूत शासक अपने पूर्ववर्ती शासकों की मुग़लों के यहाँ की गयी सेवाओं और मुग़लों के प्रति किये गये प्रतिरोधों को किस दृष्टि से देखते थे। इस ख्यात के रचनाकाल के संदर्भ में यह बात भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि इस समय तक कर्नल जेम्स टॉड राजपूताने का इतिहास लिख चुके थे जिसमें राजपूत-मुग़ल संबंधों के प्रति उनका सोच प्रदर्शित हो चुका था जिसमें इन संबंधों को टकराव के रूप में अधिक दिखाने का प्रयास किया गया था। जहाँ एक तरफ़ एक ब्रिटिश इतिहासकार राजपूत-मुग़ल संबंधों को दो स्थापित ताक़तों के अंतर्विरोधी-संबंधों के संदर्भ में देख रहा था और स्पष्ट तौर पर 'स्व' और 'अन्य' की दृष्टि विकसित करने का प्रयास कर रहा था, वहीं देशज इतिहासकार इन संबंधों को किस प्रकार से देख रहे थे— यह जानना और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए यह ख्यात इस संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

ख्यातों में वर्णित राजपूत-मुग़ल संबंध

मारवाड़ राज्य का देशज इतिहासकारों द्वारा रचित ख्यातों में सत्रहवीं सदी की *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात,* अठारहवीं सदी की *मुँदियाड़ री ख्यात* और उन्नीसवीं सदी की *राठौड़ां री ख्यात* में यहाँ के शासकों के मुग़लों के साथ संबंधों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। यह विवरण वर्णनात्मक है इसलिए इन विवरणों में समकालीन घटनाओं के प्रति लेखक का नज़रिया, मुग़लों के बारे में समकालीन सोच आदि को उनकी भाषा और घटना को लिखने के तरीक़े से समझा जा सकता है। यहाँ हम 1562 से 1707 तक के मारवाड़ के शासकों [राव चंद्रसेन (1562-1581), मोटा राजा उदय सिंह (1583-1595), सवाई राजा सूर सिंह (1595-1619), महाराजा गज सिंह (1619-1638), महाराजा जसवंत सिंह (1638-1678) और तीस वर्षीय युद्ध (1678-1707)] का उनके समकालीन मुग़ल शासकों [अकबर (1556-1605), जहाँगीर (1605-1628), शाहजहाँ (1628-1658) एवं औरंगज़ेब (1658-1707)] के साथ संबंध को उक्त तीनों ख्यातों के संदर्भ में देखेंगे।

तीनों ख्यातों में सबसे पुरानी *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* है। हम यहाँ उसी के कुछ उद्धरण लेंगे जिनमें राजपूतों के मुस्लिम शासकों के साथ संबंधों को दर्शाया गया है। ख्यात में राठौड़ वंश की विभिन्न शाखाओं की वंशावली दी गयी है जिसमें वंश-वृक्ष में आने वाले प्रमुख व्यक्तियों के विशिष्ट कार्यों का ब्योरा भी है। इन्हीं विवरणों में हमें राजपूतों के मुस्लिम शासकों के साथ संबंधों और उन संबंधों को ख्यातकार किस तरह से देख एवं प्रस्तुत कर रहा है, की जानकारी मिलती है। ख्यात में

अलाउद्दीन खिलजी के समय की एक घटना का वर्णन करते हुए ख्यातकार लिखता है कि, *अलावदी पातसाह रावल माला नूं तेडायौ, तरैं जाय मिलिया। उठै पातसाह नैं रावल मालौजी जुवै रमिया। तठ पातसाह मोहर आडी नै मालाजी कना काचरा अडाया। सु काचरा देतां बकी रह्या, त्यांरी माहर की। सु पातसाह मांग, तरै रावल मालै अतरा पातसाह रै ओल राखिया ... पछै मौहरां मेहलण रो क्युं ही सुल हुवौ नहीं तरैं पातसाह याँ नूं तुरक किया।*[14] (रावल माला और अलाउद्दीन खिलजी दोनों जुआ खेलते हैं और इसमें दोनों अपना कुछ दाँव पर लगाते हैं। इस खेल में रावल माला ने अपनी तरफ़ से चार लोगों को गिरवी रख दिया था और जब रक़म नहीं चुका पाया तो अलाउद्दीन खिलजी ने इन चारों को मुसलमान बना दिया।) ख्यातकार इस घटना को दो अन्य स्थानों पर भी अंकित कर रहा है।[15] सभी जगहों पर यह विवरण सामान्य घटना की तरह अंकित है और कहीं पर भी अलाउद्दीन द्वारा ज़बर्दस्ती करने की बात नहीं आती है। इसी तरह से अकबर के लिए ख्यात में अकबर पातशाहजी शब्द का प्रयोग किया गया है। ख्यात में मुग़ल शासकों के लिए अनेक बार *पातशाहजी* शब्द का प्रयोग है जो मुग़ल बादशाह के लिए सम्मान जताने वाला है। ख्यात में राठौड़ों की विभिन्न शाखाओं–उपशाखाओं के जिन व्यक्तियों की सूची एवं उनके कार्यों का विवरण दिया गया है उनमें अनेक बार उनके लिए *पातशाहजी रा चाकर* शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ पर कहीं इनके लिए चाकर शब्द अपमानजनक या अप्रतिष्ठाकारी संदर्भ में नहीं है, बल्कि अनेक जगहों पर तो *वडो रजपूत हुओ* शब्द का प्रयोग है। राव मालदेव के पश्चात् मारवाड़ का शासक राव चंद्रसेन बने। वे राव मालदेव के तीसरे पुत्र थे। राव मालदेव के समय में ही अकबर ने मारवाड़ के परगने मेड़ता एवं जैतारण पर आक्रमण कर के अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। मालदेव के अंतिम समय में इस तरह से मुग़लों का मारवाड़ में प्रवेश राठौड़ों के आपसी संघर्ष का परिणाम था। राव चंद्रसेन के शासक बन जाने के बाद उनके दोनों बड़े भाई मुग़ल बादशाह अकबर के पास चले जाते हैं। राव मालदेव का बड़ा पुत्र राम अकबर के पास अपने राज्य के अधिकार को दिलवाने के लिए प्रार्थना करता है। *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* में लिखा है कि, *राव राम अकबर बादशा के पास जाकर बादशाही फ़ौजें ले आया ... गढ़ तो हाथ आया नहीं लेकिन गाँव को लूट कर जलाकर चले गये ... इसके बाद राव राम फिर बादशाह के पास गया और फ़ौज लेकर आया।*[16] *मुँदियाड़ री ख्यात* में इस संबंध में वर्णन कुछ अलग है। ख्यात में लिखा है कि, *राम दिली पातसाहजी कने गयो अर सारो एवाल मालम कियो, राव मालदेवजी रो पाटवी कंवर छुं ने माहामाहव रा किसा सुं रा जोधपुर मारा छोटा भाई करे छे, अर मनु मुलक मैं रेण देवै नहीं, जबरदस्ती सूं मूर डाटै राज मारो हक थो पाटवी बैटा रो सो आप महाराजावां रा मालक हो सो मारो राज मनु दिरावो जद पातसा रांम रे साथे फ़ौज म्हैल मारवाड़ ऊपर फ़ौज म्हैली।*[17]

ख्यात में मुग़ल शासकों के लिए अनेक बार *पातशाहजी* शब्द का प्रयोग है जो सम्मान जताने वाला है। ख्यात में राठौड़ों की शाखाओं–उपशाखाओं के जिन व्यक्तियों की सूची एवं उनके कार्यों का विवरण दिया गया है उनमें अनेक बार उनके लिए *पातशाहजी रा चाकर* शब्द का प्रयोग किया गया है।

[14] रघुबीर सिंह (सं.)(2006) : 68.

[15] *राव उदैभाण चाम्पावत री ख्यात— प्रथम भाग* : 85, 99.

[16] *मुरारीदान री ख्यात* : 79.

[17] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 79.

राठौड़ां री ख्यात में इससे कुछ अलग वर्णन है— *रांम नुं उमरावां सीखाय ने अकबर पातसा कनै मेलीयो। सो अकबर री फ़ौज ले आयो।*[18]

तीनों ख्यातों में राव राम के अकबर से सहायता माँगने का विवरण है। *मुँदियाड़ री ख्यात* के अनुसार राव राम अकबर से न्याय की गुहार लगाता है। *राठौड़ां री ख्यात* में लिखा है कि राव राम को उसके सहायक सामंतों ने अकबर से सहायता माँगने के लिए प्रेरित किया था। *उदयभाण चाम्पावत री ख्यात* के अनुसार राम ने अकबर की सहायता से मारवाड़ पर आक्रमण किया और गाँवों को लूटा-जलाया। लेकिन, तीनों ही ख्यातों में कहीं पर भी अकबर को विदेशी आक्रांता या अन्य के रूप में पेश नहीं किया गया है। जबकि *मुँदियाड़ री ख्यात* में तो अकबर को महाराजाओं का मालिक कहा गया है। राव चंद्रसेन के समय में उत्तराधिकार की इस समस्या को लेकर लगातार मुग़लों के पास न्याय की गुहार लगाना और उनको अपने ही राज्य पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करना— एक भिन्न ऐतिहासिक आख्यान की तरफ़ इशारा करता है। अकबर की सेना ने हसनकुली ख़ाँ के नेतृत्व में जोधपुर का घेरा लगाया। उसका विवरण लिखते हुए ख्यातकार लिखता है कि *राव चंद्रसेणजी मुलक मे धंगो विखेडो घणो कीयो, तिण रा समाचार पातसा कनै गया, तरै पातसाहा फेर फ़ौज दै मेली ने रावजी कने राठोड पतो नगो भारमलोत नै राठोड़ जेमल ... वगेरे ए रावजी साथे था, सांमधरमी था सो सारा चंद्रसेणजी कने था नै हरामख़ोर गादी रा था सू तुरकां सुं मिल चाकर रह्या नै वीकानेर रो राव रायसंघजी पिण फ़ौज ले सिवाणे चंद्रसेणजी उपर गया झगड़ा कजिया मोकला हुआ ...*।[19] यहाँ पर स्पष्ट रूप से चंद्रसेन के पक्ष वालों के लिए स्वामीधर्मी शब्द का और जो उसके ख़िलाफ़ थे उनके लिए हरामख़ोर शब्द का प्रयोग हुआ है। हरामख़ोर मुग़लों के साथ मिल गये थे। यहाँ पर हरामख़ोर शब्द उन राजपूत सरदारों के लिए प्रयोग हुआ है जो मारवाड़ के थे और चंद्रसेन के विरुद्ध मुग़लों से मिल गये थे। जबकि मुग़लों के लिए किसी भी प्रकार के कोई विशेषण का प्रयोग नहीं किया गया है। चंद्रसेन को जब जोधपुर छोड़ना पड़ा उसके बाद जब आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी तब चंद्रसेन ने स्वयं अपने शहर को लूटा। उस समय शहर की ज़िम्मेदारी अकबर द्वारा बीकानेर के राय सिंह को दी हुई थी जो इस लूट को रोक नहीं पा रहा था। ख्यातकार लिखता है कि— *भादराजण सुं साथ सांवठो भेलो कर ख़ास जोधपुर स्हैर झड़ पडायो लूंट खोस करी, अर जोधपुर री भोलावण तुरकां री तरफ़ सुं बीकानैर रा राव रायसिंघजी नु थी सो नास ने गढ मे वड़ गया नै चंद्रसेणजी जोधपुर मांहसु दुकांनो वगेरे लूंट खोस कर माल रूपीया पचास साठ हज़ार रो अमल कपड़ो माल वगेरे ले गया।*[20]

चंद्रसेन के समय में जब अकबर ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया था और चंद्रसेन निष्कासित जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब मारवाड़ में अकाल पड़ा और क़ानून-व्यवस्था बिगड़ गयी। तब का वर्णन ख्यातकार करते हुए लिखता है कि— *मारवाड़ में काल पडीयो सो धरती सारी सुनी हो गयी ने चोरी, धाड़ो घंणो हुवे, सो तुरक तो वस आवे नहीं नैं पातसा अकबर वडो समजियांण थौ सो चोरी धाड़े रो पुरो बंदोवस्त हुतो दैखियो नहीं। तरे विचारीयो मारवाड़ रो राज पाछो राठोड़ां ने सुप देणो।*[21] ख्यातकार की दृष्टि में अकबर एक समझदार शासक है। अकाल की वजह से मारवाड़ में क़ानून एवं व्यवस्था की समस्या खड़ी हो गयी है जो अकबर के लिए भी चिंता का विषय है और वह खुद उसका समाधान करना चाहता है। अकबर सोचता है कि अंततः मारवाड़ का सही ढंग से बंदोबस्त यहीं के राठौड़ शासक ही कर सकते हैं इसलिए उन्हें ही यहाँ की ज़िम्मेदारी वापस सौंप देना चाहिए। इसी ख्यात में एक अन्य

---

[18] *राठौड़ां री ख्यात : भाग-1* : 105.
[19] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 50.
[20] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 50.
[21] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 54.

जगह पर मोटा राजा उदय सिंह के वंशजों की मालवा में जागीरों के संबंध में ख्यातकार लिखता है कि— *पातसाह री दीयोड़ी धरती खाबे है...*।[22] ख्यातकार स्पष्ट रूप से मानता है कि ये जागीरें राठौड़ों को मुग़ल बादशाह द्वारा दी गयी हैं, न कि उनकी यह मौलिक सम्पत्ति हैं। इसी तरह उदय सिंह के पौत्र महेसदास के विषय में ख्यातकार लिखता है कि— *दलपत रै बेटो म्हेसदास सो साहजादा खुरम रे चाकर थो। पछे राजाजी रे चाकरर रहयो तरे कुड़की रो पटो दीयो थो। पछे समत 1684 रा म्हा में मोबतख़ां रे चाकर रह्यो। दिखण मांहे मोबतखां रै आगै पुरा घावां पड़ीयो थो। पछे मोबतखां मुवो तरै पातसाजी चाकर राखीयो*।[23] यहाँ पर मुग़ल बादशाह के लिए पातशाहजी शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्मानपूर्वक 'जी' का प्रयोग ख्यातों में प्राय: सभी के लिए नहीं मिलता। यहाँ तक कि दूसरे राज्य के राजा के लिए भी 'जी' का प्रयोग नहीं है। लेकिन, मुग़ल बादशाह के लिए अनेक बार पातशाहजी शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अलावा मारवाड़ के शासकों के लिए जी शब्द का प्रयोग किया गया है।

महाराजा सूर सिंह के समय बादशाह अकबर की नाराज़गी का एक विवरण *राठौड़ां री ख्यात* में मिलता है। ख्यातकार लिखता है कि— *समत 1655 राजाजी अहमदावाद सूं दिखण ने वीदा हुवा, तरै जातां सोजत में ढील की, तरै अकबर पातसा रीसाय ने राठौड सकतसिंघ उदैसिघोत नु सोजत लिख दीवी*।[24] यद्यपि इस घटना का उल्लेख किसी भी समकालीन तवारीख़ या फ़ारसी ग्रंथ में नहीं है, फिर भी ख्यातकार इस घटना का उल्लेख करता है। स्पष्ट रूप से ख्यातकार मुग़ल प्रभुसत्ता को सहजता से स्वीकार करता है और राजपूत शासक के प्रति मुग़ल शासक के इस व्यवहार को ठीक उसी तरह से मानता है जिस तरह का व्यवहार राजपूत शासक अपने किसी सामंत से करते थे। इसी ख्यात में आगे चल कर ख्यातकार एक अन्य घटना का उल्लेख करते हुए लिखता है कि मेड़ता और जैतारण के परगने मारवाड़ के शासक को पुन: दिलवाने के लिए किस तरह से अकबर से गुहार लगाई गयी, और अकबर ने उनकी परेशानी समझ कर मेहरबानी करते हुए मेड़ता और जैतारण के परगने सूर सिंह के नाम इस शर्त पर कर दिये हैं कि उस क्षेत्र में परेशानी खड़ी कर रहे दयालदास राठौड़ को पकड़ कर सज़ा देनी होगी। इस शर्त को मान लिया जाता है— *पातसा जांणीयो बिचारा पूरा परेसवांन छे, सो म्हेरवाणी कर मेड़तो आदो तो प्हैला हीज इनायत कीयो थो, ने आदो फेर इनांयत कर दीयो नै जैतारण पिण दीवी नै कह्यो राठोड़ दयालदास चांदावत पातसाही मुलक रो विगाड़ घंणो करे छे, तिण कुं सझा दैणी जद इंणां हांकारो भरीयो के ठीक है*।[25] यहाँ पर भी ख्यातकार इन क्षेत्रों के बारे में लिखते हुए उन्हें *पातशाही मुलक* लिखता है। साथ ही एक बाग़ी राठौड़ राजपूत को सज़ा देने का काम राठौड़ शासक को ही दिया जाता है, जिसे शासक सहजता से स्वीकार कर लेता है।

अकबर के समय में राजपूताना के प्रमुख राज्यों में आमेर, मारवाड़ एवं बीकानेर तीनों ही मुग़ल सत्ता के अधीन आ चुके थे। सिर्फ़ मेवाड़ के शासक ने ही अधीनता को स्वीकार नहीं किया था। अकबर की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ को अधीनता में लाने का कार्य जहाँगीर के समय में पूरा हुआ। 1609 में मेवाड़ के राणा अमरसिंह का दमन करने के लिए बादशाह जहाँगीर ने महाबत ख़ाँ को भेजा। जब महाबत ख़ाँ को यह पता लगा कि मेवाड़ के राणा का परिवार पलायन करके सूर सिंह के इलाक़े सोजत में शरण प्राप्त किये हुए है, तो अप्रसन्न होकर महाबत ख़ाँ ने सोजत का परगना सूर सिंह से लेकर करमसेन राठौड़ को दे दिया जो एक साल तक उसके पास रहा। बाद में जब महाबत ख़ाँ की जगह अब्दुल्ला ख़ाँ को इस अभियान की कमान सौंपी गयी, तब सोजत के परगने को पुन: सूर सिंह को दिया गया। इस घटना का विवरण *मुँदियाड़ री ख्यात* और *मारवाड़ री ख्यात* दोनों में दिया हुआ

[22] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 57.
[23] *राठौडां री ख्यात : भाग-1* : 130.
[24] *राठौडां री ख्यात : भाग-1* : 134.
[25] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 60.

है— *समत 1665 वरस पातसाजी रांणा उपर मोबतखां नै वीदा कीयो। पातसाजी फ़ौजां मोही थी तठै मोबतखांन आय ने पूछीयो–राणा रे गाँव रो लोक नास नै कठौ गयो। तरै कीतरां कह्यो राषा री बैर लोक सघलो नास नै राजा सूरसिंघजी री धरती मे छिप रयो। तरै मोहबतखां रिसाय ने राठौड करमसेण उग्रसेणोत नु सोजत दीवी।*[26] एक राजपूत राज्य के शासक के परिवार वालों को संरक्षण देने की शंका से ही एक मुग़ल सूबेदार मारवाड़ के शासक के परगने को छीन लेता है और उसके प्रति किसी प्रकार का कोई विद्रोह नहीं होता, बल्कि महाबत ख़ाँ को समझाने–बुझाने के प्रयास होते हैं— *गोयनदास राजाजी री हजूर था सु मोबतखांन कनै गाँव मोही आय मोबतखांन सु रदल–बदल घणी कीवी पिण मोबतखांन मांनी नही।*[27] ख्यातकार के नज़रिये से भी इसमें कोई समस्या नहीं दिखाई देती कि एक राजपूत शासक दूसरे राजपूत शासक के परिवार को मुग़लों की वजह से खुले तौर पर संरक्षण तक नहीं देता।

जहाँगीर के समय में जब शहजादा ख़ुर्रम ने विद्रोह किया तब मारवाड़ के महाराजा गज सिंह ने जहाँगीर का साथ दिया और ख्यातकार ने इसे स्वामी धर्म कहा। खुर्रम के विरुद्ध लड़ते हुए महाराजा गज सिंह ने मेवाड़ के महाराणा भीम सिंह के साथ लड़ाई की और उस युद्ध में भीम सिंह मारा गया। इस लड़ाई का भी ख्यात में विस्तार से वर्णन और गज सिंह की स्वामीभक्ति सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। लेकिन जब जहाँगीर के पश्चात् ख़ुर्रम अगला मुग़ल बादशाह बनता है तब गज सिंह के लिए यह मुश्किल हो जाता है कि वह शाही सेवा में किस प्रकार जाए। इस दुविधा को व्यक्त करते हुए ख्यातकार लिखता है कि— *म्हाराज पहेली पातसा जांगीर रा सामधरमा सुं कर साहजां सुं कजीया कीया था, सो इण वात री दुतरफ़ी मन मैं गलांन थी, सो साहजा पातसा परवाणो मेल खातरी फ़रमाई ने तसली दिवी।*[28] स्पष्ट तौर पर मारवाड़ के शासक की स्वामीभक्ति शाही सिंहासन के प्रति थी, न कि उत्तराधिकारी के प्रति। ठीक इसी प्रकार से जब शाहजहाँ के अंतिम वर्षों में उत्तराधिकार का युद्ध हुआ तब मारवाड़ के शासक जसवंत सिंह ने शाहजहाँ की तरफ़ से उत्तराधिकार के युद्धों में भाग लिया। जसवंत सिंह ने पूरी निष्ठा के साथ ये लड़ाइयाँ लड़ीं किंतु इस संघर्ष का परिणाम जसवंत सिंह के लिए अनपेक्षित रहा और औरंगज़ेब सफल हुआ। औरंगज़ेब के विरुद्ध धरमाट के प्रसिद्ध युद्ध में जसवंत सिंह लड़ चुका था और अब उसी औरंगज़ेब के प्रमुख मनसबदार के रूप में कार्य करना उसके लिए मुश्किल हो रहा था। यद्यपि औरंगज़ेब और जसवंत सिंह का आपसी संबंध कभी मधुर नहीं रहा, किंतु ख्यातकार ने इसे भी एक मधुरता देने का प्रयास किया है। औरंगज़ेब और जसवंत सिंह की एक मुलाक़ात का वर्णन करते हुए ख्यातकार लिखता है कि— *एक दिन फुरमायो, हज़रत आला साहजहाँ रै बखत था साथे राठौड नारखां राजसिंघोत वगैरह आम ख़ास– गुसलखाने आदमी आवता, सु अब भी आवे। तरे श्री जी अरज करी तरे म्हैं बालक था म्हे हजरत रा खानाजाद बंदा छा। अति मैहरवांनी फुरमाई।*[29] ख्यातकार दोनों के बीच के संबंध को मधुर बताने का पूरा प्रयास करता है। आमेर के राजा सवाई जय सिंह ने जसवंत सिंह को औरंगज़ेब से मिलवाने के जो प्रयास किये उसका वर्णन भी ख्यात में मिलता है— *जैपुर रा महाराज जेसिंघजी छड़वड़ा असवारां सूं औरंगज़ेब कने जावता हा सो सामा मिलिया। घड़ी च्यार एकन्त महाराजसूं बातां किवी, सो महाराज तो जेसिंघजी रो कयो मानियो नहीं। न ईसरसिंघ, भावसिंघ, रायसिंघ वगैरह ने जैसिंघ जी पाछा ले गया सो औरंगज़ेब रै पगां लगाय कसूर माफ़ करायो।*[30] जसवंत सिंह को औरंगज़ेब से मिलवाने का जय सिंह का प्रयास असफल हुआ, किंतु बाक़ी अन्य राजपूत शासकों को औरंगज़ेब से अवश्य मिलवा दिया। ख्यातकार इस सबंध में स्पष्ट लिखता है कि

[26] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 136.

[27] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 136.

[28] *मुँदियाड़ री ख्यात* : 75–76, *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 171.

[29] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 239.

[30] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 231–232.

औरंगज़ेब ने इनकी ग़लती को माफ़ किया। मुग़ल उत्तराधिकार संघर्ष में औरंगज़ेब के ख़िलाफ़ लड़ने को ख्यातकार ग़लती के रूप में मानता है। *राठौड़ां री ख्यात* में राम सिंह नाथावत द्वारा किशन सिंह गौड़ की हत्या की घटना का विस्तार से वर्णन किया हुआ है। इस घटना का वर्णन ख्यातकार जिस तरह से करता है उसमें स्पष्ट तौर पर यह समझा जा सकता है कि सत्रहवीं सदी में भारत में राजपूत शासक मुग़ल शासकों के प्रति क्या नज़रिया रखते थे और अपने संबंध के प्रति क्या सोच रखते थे। राम सिंह नाथावत, जो कि आमेर राज्य का एक सामंत था, ने किशन सिंह गौड़ की हत्या पुरानी दुश्मनी के कारण कर दी। किशन सिंह गौड़ मुग़ल मनसबदार था। इस हत्या के विस्तृत विवरण में आमेर शासक जय सिंह का मुग़ल बादशाह के प्रति भय को व्यक्त करते हुए ख्यातकार लिखता है कि— *आ बात जैसिंघजी सुणी पातसाह सूं डरतां छाती फाटी ने रामसिंघजी नु केवायो ईसो खोटो कांम कींऊ कीयो हमे म्हांरी जमी में उभा रैजो मती.....जैसिंघजी दर कूचां आगरे जाय पातसा सु मुलाजमत कर ने कैयो हजरथ नाथावतां कुताई करी। म्है तो ओ सुणीयो तरै उणोंने जम्ही बारे काड दीया।*[31] राम सिंह नाथावत की शिकायत मुग़ल बादशाह को की जाती है और उसके लिए हरामी शब्द का प्रयोग किया गया है— *पातसाह सु जाय अरज कीवी — हजरथ कीसनसिंघ नु मारीया सो हरामी अठै आयो।*[32] राम सिंह मुग़ल बादशाह से भयभीत हो जाता है और अपने मित्र मारवाड़ के प्रमुख सामंत उदयभाण चाम्पावत से मदद माँगता है। जिस पर उदयभाण चाम्पावत समस्त राजपूत शासकों को उसकी मदद के लिए इकट्ठा कर देता है। ख्यात में लिखा है कि— *रजपूत छां सु थांने छोड़ ने कीकर जावां हु थारो भेळो हुं......महाराज गजसिंघजी रे डेरे नगारो हुवो सुण हाडा, भाटी वगेरे सारा ही हिंदु तयार हुवा। कछवावा वीना समसत हिंदु तयार हुवा तरे ए समाचार पातसाजी उ मालम हुवा हजरत मोटो जुलम हुवो सो हींदु तरकांणी सारी जाजम उठे है।*[33] ख्यात में समस्त राजपूत शासकों की एकजुटता का परिचय पहली बार मिलता है। लेकिन इतने पर भी मुग़लों की न्यायप्रियता पर पूरा भरोसा दिखाया जाता है। राम सिंह नाथावत कहता है कि, *मारे वासते सारा राजा खेद किउ करावो पातसाजी नु वेराजी नहीं कराहीजै।*[34] मुग़ल बादशाह को नाराज़ नहीं किया जा सकता। राम सिंह नाथावत की पूरी घटना के विवरण में हमें उस संस्कृति की कुछ झलक भी मिलती है जिसे राजपूती आन की संस्कृति के रूप में जाना जाता है। लेकिन इस पूरी घटना का विवरण एक बार फिर मुग़ल बादशाह की सर्वोच्चता को सामान्य स्वीकृति के रूप में व्यक्त करता है और राजपूत शासकों की मुग़लों की अधीनस्थता मजबूरी नहीं वरन् परम्परा का हिस्सा ही प्रतीत होती है।

ख्यातकार की दृष्टि में अकबर एक समझदार शासक है। अकाल की वजह से मारवाड़ में क़ानून एवं व्यवस्था की समस्या ... अकबर के लिए भी चिंता का विषय है ... अकबर सोचता है कि मारवाड़ का सही ढंग से बंदोबस्त यहीं के राठौड़ शासक ही कर सकते हैं इसलिए उन्हें ही यहाँ की ज़िम्मेदारी वापस सौंप देना चाहिए।

निष्कर्ष

मध्यकाल में उत्तर भारत में मुग़लों की सत्ता स्थापित होने के समय राजपूत राज्य स्वतंत्र थे और प्राय: सभी राज्य किसी न किसी विशेष राजपूत शाखा से संबंधित थे, जैसे— मारवाड़ का राज्य राठौड़ों का,

[31] *राठौडां री ख्यात : भाग –1* : 181.
[32] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 182.
[33] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 182.
[34] *राठौडां री ख्यात : भाग–1* : 183.

जैसलमेर भाटियों का, सिरोही देवड़ा का, मेवाड़ सिसोदिया का, बीकानेर राठौड़ों का, आमेर कछवाहों का, बूँदी हाड़ों का आदि। इस प्रकार ये सभी राजपूत राज्य होते हुए भी एक-दूसरे से इस प्रकार भिन्न थे कि उनमें उस आधुनिक संदर्भ की राष्ट्रीयता को नहीं ढूँढ़ा जा सकता। ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच के देशज इतिहासकार भी इन राज्यों को अलग-अलग ही मानते थे और इनके आपसी संबंध अधिकांश में मुग़लों के संदर्भ में ही अधिक परिभाषित होते थे।

मुग़ल भारत में बाहर से आये थे, लेकिन क्या राजपूत राज्यों द्वारा उनको सदैव आक्रांता के बतौर ही देखा गया? इस संदर्भ में भी ख्यातों में स्पष्ट जवाब मिल जाता है कि उस समय मुग़लों के आक्रांता के रूप में नहीं बल्कि सर्वोच्च सत्ता, मालिक या स्वामी के रूप में माना जाता था। अपने उत्तराधिकार की समस्या, राज्यों के आपसी संबंधों की समस्या या फिर आंतरिक विद्रोह आदि की समस्या के लिए सदैव मुग़ल सत्ता की तरफ़ आशापूर्ण दृष्टि से देखा जाता था और न्याय की अपेक्षा रखी जाती थी।

देशज इतिहासकारों के विवरणों से 'स्व' और 'अन्य' के संदर्भ में यह कहीं पर भी नहीं लगता कि राजपूत शासक एक अलग और सम्पूर्ण इकाई के रूप में थे एवं मुग़ल या मुस्लिम शासक उनके विरुद्ध इकाई रूप में थे। दोनों के आपसी संबंध भले ही प्रतिरोध एवं सहयोग के रहे हों, किंतु ये किसी भी तरह से 'अन्य' के संदर्भ में नहीं बल्कि सामयिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रस्तुत किये गये हैं। देशज इतिहासकारों के वर्णन में कहीं पर भी यह नहीं लगता कि राजपूत शासक मुग़लों की अधीनता में कोई छटपटाहट महसूस कर रहे थे और वे मुग़लों से स्वतंत्र होने के किसी मौक़े की तलाश में थे। बल्कि इसके ठीक उलट राजपूत शासक मुग़ल सर्वोच्चता के अंतर्गत स्वयं को सुरक्षित महसूस करते प्रतीत होते हैं।

मुग़लों के इतिहास-लेखन में फ़ारसी तवारीख़ों का उपयोग अधिक हुआ है। उसमें मुग़लों के नज़रिये से समकालीन समय को देखा गया है जबकि देशज इतिहासकारों के नज़रिये से भी समकालीन इतिहास को देखना ज़रूरी हो जाता है जो या तो पूर्व अवधारणाओं को पुष्ट करेगा या फिर उनमें संशोधन करेगा। इस संदर्भ में ख्यातें महत्त्वपूर्ण हैं। फ़ारसी तवारीख़ों में मुग़ल-राजपूत संबंध स्वामी की दृष्टि से देखा गया है जबकि ख्यातों में यह संबंध एक सेवक की दृष्टि से देखा गया है।

संदर्भ

जी.डी. शर्मा (सं.)(1986), *वकील रिपोर्ट्स महाराजगन (1693-1712 ई.स.)*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली.

रघुबीर सिंह (सं.) (2006), *राव उदैभाण चाम्पावत री ख्यात-प्रथम भाग,* श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ.

रघुबीर सिंह (सं.)(2006), *राव उदैभाण चाम्पावत री ख्यात— प्रथम भाग,* श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ.

राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के उन्तीसवें अधिवेशन (2014) में डॉ. इनायत अली ज़ैदी का अध्यक्षीय भाषण : 'कॉनकरंट सिनर्जी ऑफ़ डिवेलपमेंट : राजस्थान ऐंड मुग़ल इण्डिया', rajhisco.com देखें.

सतीश चंद्र (1993), *मुग़ल रिलीजस पॉलिसीज़, द राजपूत्स ऐंड द डेक्कन,* विकास पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

विक्रम सिंह भाटी (सं.)(2005), *मुँदियाड़ री ख्यात,* इतिहास अनुसंधान संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.

----------- (सं.)(2014), *मुरारीदान री ख्यात,* रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर.

विक्रम सिंह अमरावत (2017), *ख्यात साहित्य और इतिहास-लेखन,* इतिहास अनुसंधान संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.

हुकम सिंह भाटी (सं.)(2007), *राठौडां री ख्यात—भाग-1,* इतिहास अनुसंधान संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.